(खण्ड–अ)
संगीत गायन

अध्याय 1

अ. परिभाषाएं
ब. भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियाँ

अ. परिभाषाएं

अलंकार

संगीत में अलंकार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्ण की नियमित रचना अथवा विशिष्ट स्वर समुदाय को अलंकार कहते हैं। प्रचार में इसे पल्टा भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में नियमित क्रम से की हुई स्वर रचना को अथवा स्वरों की सिलसिले वार रचना को अलंकार या पल्टे कहते हैं ।जैसे : – सारेग, रेगम, गमप सारेसारेग, रेगरेगम, गमगमप, इत्यादि।

'संगीत रत्नाकर' में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

''विशिष्ट वर्ण प्रचक्षते''

भावार्थ :– विशेष वर्ण समुदायों को अलंकार कहते है।

"The specific Pattern of a certain group of notes is known as Alankar"

अलंकार का अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार आभूषण एक स्त्री की शोभा के लिये होते हैं उस प्रकार अलंकार गायन–वादन की सुन्दरता के लिए होते हैं।

स्वर का शीघ्र ज्ञान होना व राग का विस्तार समझ में आना ही अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। अलंकार में स्वर संख्या के लिए कोई नियम नहीं है। अलंकार में कई कड़ियाँ होती है। जो आपस में एक दूसरे से जुड़ी होती है। इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है। संगीत के विद्यार्थियों को प्रारम्भ में नित्य प्रति अंलकार का अभ्यास करना चाहिये। इससे विद्यार्थियों में रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और गायन में गला विभिन्न प्रकार के स्वरों पर घूमने योग्य हो जाता है।

अगर किसी राग में अंलकार बनाने हैं तो उसके आरोह–अवरोह में लगने वाले स्वरों के अनुसार स्वर प्रयोग करने पड़ेंगे। प्रत्येक अंलकार में मध्य सासें तार सा तक आरोही वर्ण और तार सां से मध्य सा तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। इस प्रकार अंलकार आरोह तथा अवरोह दोनों में होते हैं।

संगीत में अंलकार के दो प्रयोजन है :–

(1) विद्यार्थियों के गले व हाथ की तैयारी करना तथा स्वर व ताल का ज्ञान करना।

(2) गायन वादन क्रिया में इन अंलकारों का प्रयोग कर अपने गायन–वादन को सुन्दर तथा भावयुक्त बनाना।

आरोह– अवरोह

आरोह–अवरोह के शाब्दिक अर्थ के अनुसार स्वरों के चढ़ते क्रम को आरोह और इसके विपरीत स्वरों को उतरते क्रम को अवरोह कहते हैं। जैसे षडज स्वर से निषाद की ओर जाने को आरोह कहते हैं। तथा निषाद से षड़ज की ओर वापस लौटने को अवरोह कहते हैं।

जैसे– आरोह – सा रे ग म प ध नि सां अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।

गाते बजाते समय गायक या वादक किसी भी एक स्वर पर बहुत समय तक नहीं ठहरता बल्कि वह ऊपर नीचे चढ़ता उतरता है। इसी को हम आरोह–अवरोह कहते हैं।

कुछ रागों में स्वरों का उतार चढ़ाव सपाट न होकर वक्र होता है – जैसे :– राग केदार का आरोह–सा म म प ध प, नि ध सां इसमें ध प और नि ध आवरोहात्मक स्वर है फिर भी ये आरोह में रखे गये है। और ऐसे अनेक राग है जिनके आरोह–अवरोह इसके शाब्दिक अर्थानुसार ठीक नहीं है। अतः हम आरोह–अवरोह की परिभाषा इस प्रकार दे सकते है राग के चलन के अनुसार मध्य सा से तार सा तक स्वरों के चढ़ते क्रम को आरोह और इसके विपरीत तार सा से मध्य सा तक स्वरों के उतरते क्रम को अवरोह कहते है।

आरोह–अवरोह राग का एक अनिवार्य तथा महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यह राग में विचरण करने का राग के विस्तार का मार्ग है। यह राग का 'कायदा' है। राग के आरोह–अवरोह से राग का स्वरूप बहुत–कुछ स्पष्ट हो जाता है।

पकड़ :–

वह छोटा सा स्वर समुदाय जिसके द्वारा राग का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाय राग की पकड़ कहलाता है। स्वयं पकड़ शब्द से यह स्पष्ट है कि जिससे किसी राग को पकड़ा जा सके अर्थात् राग पहचाना जा सके। अर्थात् राग सूचक स्वर समुदाय पकड़ कहलाता है।

प्रत्येक राग में कुछ स्वर समुदाय ऐसे होते है जो उस राग को अन्य सभी रागों से अलग दिखा देते है। पकड़ ऐसे ही समुदायों में से एक मुख्य स्वर समुदाय या राग सूचक स्वर समुदाय है जैसे :– नि ध, म प ध, म ग गाते ही रवमाज राग का रूप स्पष्ट हो जाता है।पकड़ का उद्देश्य राग को स्पष्ट करने का है। अतः कोई सा स्वर समुदाय जो इस कार्य को पूर्ण कर सके, राग की पकड़ कहा जा सकता है।राग गाते समय पकड़ वाला अंश बार–बार गाया बजाया जाता है। जिससे राग स्पष्ट होता रहे तथा उसका पूर्ण स्वरूप श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित होता रहे।

वर्ण:–

गाने की प्रत्यक्ष क्रिया को या गाने के ढंग को वर्ण कहा गया है। '' गान क्रियोच्यते वर्ण '' अर्थात गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। दूसरे शब्दों में गाते बजाते समय विभिन्न स्वरों के प्रयोग के कारण आवाज को जो चाल मिलती है उसे वर्ण कहते हैं।

वर्ण चार प्रकार के होते हैं – जिन्हें स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण कहते है।

(1) स्थायी वर्ण : – किसी भी एक स्वर को बार–बार गाने, बजाने या उच्चारण करने को 'स्थाई वर्ण' कहते हैं। जैसे – सा सा सा सा अथवा ग ग ग ग यह स्थाई वर्ण हुआ।

(2) आरोही वर्ण : – षड्ज से ऊपर निषाद की ओर स्वरों को गाते या बजाते हुए जाने को 'आरोही वर्ण' कहते हैं। जैसे हम 'सा' से ऊपर नि तक सा रे ग म प ध नि इस प्रकार को कहें तो यह आरोही वर्ण कहलायेगा।

(3) अवरोही वर्ण : – निषाद से नीचे षड़ज की ओर स्वरों को गाते या बजाते हुए वापस आने को 'अवरोही वर्ण' कहते हैं। जैसे – नि से नीचे सा तक – नि ध प म ग रे सा स्वरों को गायें या बजाये तो यह अवरोही वर्ण होता है।

(4) संचारी वर्ण : – स्थायी, आरोही और अवरोही इन तीनों वर्णों के मिश्रण या मेल को संचारी वर्ण कहते है। अर्थात् ये तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते है। तब उसे संचारी वर्ण कहते हैं। जैसे – सा रे ग सा सा ग रे गम प ध पम गरे सारे सासा रे ग म प म ग म ग रे सा।

गाते या बजाते समय इन सब वर्णों का प्रयोग किया जाता है। किसी भी गायक या वादक को गायन वादन में ये चारों वर्ण अवश्य मिलेंगें इसके बिना गायन क्रिया या वादन क्रिया चल नहीं सकती है।

ग्राम:–

ग्राम शब्द का अर्थ है गांव। यह एक समूहवादी शब्द है। जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिलजुल कर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं, उसी प्रकार संगीत में स्वरों के रहने के स्थान को प्राचीन समय में ग्राम कहा जाता था।

जिस प्रकार अलग–अलग गांव में भिन्न–भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं उसी प्रकार संगीत में भिन्न–भिन्न आवाजों के अन्तर पर स्वर स्थित रहते हैं। इस प्रकार प्राचीन समय की संगीत पद्धति में निश्चित श्रुत्यांतरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं। अतः जब तक स्वरों में श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप से होगी तभी तक ग्राम रहेगा।

ग्राम तीन प्रकार के माने जाते थे, जिन्हें (1) षड्ज ग्राम (2) मध्यम ग्राम (3) गंधार ग्राम कहते थे।

(1) षड़ज ग्राम :– जिस ग्राम में सा रे ग म प ध नि ये सात स्वर चतुश्र चतुश्र चतुश्र चैव षड़ज मध्यम पंचमा, द्वे द्वे निषाद गांधारों,

तिस्त्री, ऋषभ धैवता अर्थात चार–चार श्रुतियाँ सा म प की दो दो श्रुतियां नि, ग की और तीन–तीन श्रुतियाँ रे ध की इस नियम के अनुसार 4,7,9,13,17,20 और 22 इन श्रुतियों पर सात स्वर स्थित रहते हैं। इसे प्राचीन समय में षड़ज ग्राम कहते थे।

स्वर –सा रे ग म प ध नि

श्रुति – 4 7 9 13 17 20 22

षड़ज ग्राम में षड़ज स्वर की प्रधानता है इसलिये इसका नाम षड़ज ग्राम पड़ा।

(2) मध्यम ग्राम : – मध्यम ग्राम में सा रे ग म ध नि ये छः स्वर षड़ज ग्राम के अनुसार ही श्रुतियों पर स्थित रहते थे। परन्तु पंचम स्वर एक श्रुति कम यानी सत्रहवीं श्रुति के बजाय सोलहवीं श्रुति पर स्थित रहता था। उसे मध्यम ग्राम कहते हैं।

स्वर – सा रे ग म प ध नि

श्रुति – 4 7 9 13 16 20 22

अतः मध्यम ग्राम में सातों स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 3, 4, 2 श्रतियों की दूरी पर स्थापित हो गये मध्यम ग्राम का नाम मध्यम ग्राम इसलिये पड़ा क्योंकि इसमें मध्यम स्वर प्रधान होता है।

(3) गान्धार ग्राम : – इस ग्राम का संगीत के ग्रन्थों में वर्णन नहीं मिलता है। भरत ने भी अपने ग्रन्थ में गन्धार ग्राम का वर्णन नहीं किया है। बस इतना ही कहा कि गन्धार ग्राम गन्धर्व लोगों के साथ स्वर्ग लोक में निवास करता है। गान्धार ग्राम का गायन स्वर्ग लोक में ही हुआ करता था।

इस प्रकार ग्राम कुल तीन होते है षड़ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गन्धार ग्राम। इसमें से गन्धार ग्राम स्वर्गलोक में निवास करता है। मध्यम ग्राम का प्रचार अब नहीं है। षड़ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम 4,3,2,4,4,3,2 होता है और ये स्वर हमारे काफी थाट जैसे होते है।

मूर्च्छना

क्रमाव्यवस्था सप्तानामारोह श्चावरोहणम मूर्च्छनेव्युच्यते ग्रामद्वयेताः सप्तसप्तच।। –'संगीत रत्नाकर'

सात स्वरों के क्रमिक आरोह–अवरोह को मूर्च्छना कहते है और दोनों ग्रामों में से प्रत्येक की सात–सात मूर्च्छनाएं बनती है।मूर्च्छना की उत्पत्ति ग्राम से हुई थी। इस प्रकार षड़ज ग्राम और मध्यम ग्राम से बनी सात स्वरों के सिलसिले वार या क्रमानुसार आरोह–अवरोह को मूर्च्छना कहते थे ग्रामों के सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर से आरम्भ करके आठवें स्वर तक आरोह करें फिर उन्हीं स्वरों पर अवरोह करें तो इस प्रकार जो सिलसिले वार आरोह–अवरोह बनेगें वे मूर्च्छनाएँ कहलाएगी।

प्रत्येक ग्राम से मूर्च्छना बनाने का कायदा यह था कि षड्ज ग्राम की मूर्च्छना स्वर से आरम्भ की जाती थी और फिर शेष छः मूर्च्छनाएँ मन्द्रसप्तक के अन्य स्वर से आरम्भ की जाती थी। इसी प्रकार मध्यम–ग्राम की पहली मूर्च्छना मध्यम स्वर से आरम्भ की जाती थी।

मूर्च्छना का प्रचार प्राचीन समय में तो अवश्य था परन्तु मध्य काल में मूर्च्छना के अर्थ में परिवर्तन हो गया और आधुनिक काल धारा के प्रवेश आ जाने से मूर्च्छनाओं का अस्तित्व नहीं रह गया है।

गमक :–

आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन्न पैदा होता है तो उसका गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करना ही गमक कहलाता है शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है ''स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः''।

अर्थात स्वरों के ऐसे कम्पन्न को गमक कहते है जो सुनने वालों के चित्त को सुखदाई हो।

आधुनिक काल में गमक की यह परिभाषा नहीं रही। अब स्वरों को गम्भीरतापूर्वक उच्चारण करने को गमक कहते हैं। गायन में गमक उत्पन्ना करने से नाभि पर जोर पड़ता है। ध्रुपद धमार में गमक का खूब प्रयोग होता है। आधुनिक समय में ख्याल–गायन का अधिक प्रचार होने के कारण गमक का प्रयोग बहुत कम हो गया है।

प्राचीनकाल में गमक के 15 प्रकार माने जाते थे। कर्नाटक संगीत में इनमें से अधिकांश का प्रयोग आज भी गमक के नाम से मिलता है। किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत में वर्तमान समय में गमकों का प्रयोग प्राचीन ढंग से नहीं होता तथापि किसी न किसी रूप में गमक का प्रयोग वाद्य संगीत और कंठ संगीत में होता अवश्य है। खटका मुर्की, जमजमा, मींड सूत, गिटकरी, कम्पन्न इत्यादि शब्द गमक की

ही श्रेणी में आते हैं।

आलाप :–

राग के स्वरूप की रक्षा करते हुए विलम्बित लय में विस्तार करने की क्रिया को आलाप कहते है।

कुछ निश्चित स्वरों के अन्दर विस्तार करने की क्रिया भारतीय संगीत की प्रमुख विशेषता रही है। आलाप में सौन्दर्य –वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार कण, खटका, मुर्की, भीडं, गमक आदि का प्रयोग होता है। जिससे गायक अपनी हृदयगत भावनाओं को व्यक्त करता है। पहला आकार में और दूसरा नोम–तोम में। नोम–तोम का आलाप अधिकतर ध्रुपद धमार में तथा आकार का आलाप ख्याल में किया जाता है।

आलाप का प्रयोग मुख्यतः दो स्थानों पर होता है।

(1) गीत अथवा गत के पूर्व

(2) गीत अथवा गत के बीच

गीत अथवा गत के पूर्व का आलाप चार भागों में दिया जाता है – स्थाई अन्तरा, संचारी और आभोग। आलाप के बाद गीत अथवा गत को प्रारम्भ किया जाता है और इसी स्थान से तबले का प्रयोग प्रारम्भ होता है।

गाने के बीच का आलाप आकार में छोटा होता है।

प्रत्येक आलाप के बाद गीत अथवा गत का मुखड़ा पकड़ कर सम से मिल जाते हैं।

दोनों प्रकार का आलाप नोम तोम तथा आकार राग का स्वरूप, चलन, आरोह–अवरोह तथा न्यास के स्वर का ध्यान रखते हुए किया जाता है। गीत के शब्दों को लेकर आलाप करने को बोल–आलाप कहते हैं।

तान :–

तान का अर्थ है फैलाना या तानना अर्थात् कुछ स्वरों को एक साथ गाने को तान कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते है कि द्रुतगति में राग के स्वरों को आकार में गाने को तान कहते है।

आलाप और तान में केवल गति का अन्तर होता है अन्यथा दोनों समान हैं। आलाप – तान द्वारा गीत में सुन्दरता तथा वैचित्र्य उत्पन्न होता है। तथा गीत काफी समय तक बढ़ाया जा सकता है।

तानें कई प्रकार की होती हैं जैसे शुद्ध तान, सपाट तान, कूटतान, छूट की तान, खटके की तान, झटके की तान, वक्रतान, जबड़े की तान अंलकारिक तान, मिश्रतान तथा बोलतान इत्यादि। तानों का प्रयोग ख्याल नामक गीतों में बहुत होता है। क्योंकि इस गायन में तान लेने की स्वतन्त्रता दी गई है। ध्रुवपद गायन में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है तान छोटी–से–छोटी और बड़ी से बड़ी हो सकती हैं।

तानों का प्रयोग गाने के बीच में होता है। वाद्यों में प्रयोग किये जाने वाली तानों को तोड़ा कहते है। छोटे ख्याल में अधिकतर दुगुन और कभी कभी बराबर की लय की और बड़े ख्याल में चौगुन, अठगुन, बारह गुन, सोलह गुन के लय की तान बोलते है।

Milestone of Hindustani Music
Ut. Amir Khan Sahib

ब. भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियाँ

भारत वर्ष में मुख्य रूप से दो प्रकार की संगीत पद्धतियाँ प्रचालित हैं।

प्राचीनकाल में सम्पूर्ण भारत में संगीत की केवल एक पद्धति थी लेकिन विदेशी आक्रमणों के कारण ये अलग–अलग हो गई। क्योंकि विदेशी आक्रमणों का प्रभाव उत्तर भारत में अधिक पड़ा। दक्षिण भारतीय संगीत पर कोई बाह्य प्रभाव न पड़ा। अतः वहाँ का संगीत अपरिवर्तित रहा।

इस प्रकार भारतीय संगीत में प्रमुख रूप से दो प्रकार का संगीत मिलता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा कर्नाटक संगीत पद्धति केसंस्थापक आचार्य

(1) हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति :–

यह संगीत पद्धति तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल व आन्ध्रप्रदेश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हैं। इसे उत्तर भारतीय संगीत पद्धति भी कहते हैं।

(2) कर्नाटक संगीत पद्धति :–

यह पद्धति तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल तथा आन्ध्रप्रदेश की ओर प्रचलित है। इसे दक्षिणी संगीत पद्धति भी कहते है।

वास्तव में हिन्दुस्तानी और कर्नाटकी इन दोनों संगीत पद्धतियों का बीज एक ही है। परन्तु दोनों एक दूसरे से स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र होते हुए भी दोनों में कुछ समानता तथा भिन्नता है।

हिन्दुस्तानी संगीत

(1) हिन्दुस्तानी संगीत स्वर प्रधान होता है।

(2) इस पद्धति में केवल गीत की बंदिश निबद्ध रूप में गायी जाती है, अन्य सम्पूर्ण विस्तार अनिबद्ध रूप से किया जाता है।

(3) हिन्दुस्तानी संगीत शैली के अन्तर्गत अलाप, बोल तान तथा तान इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है।

(4) विलम्बित ख्याल की लय अति विलम्बित होती है।

(5) हिन्दुस्तानी संगीत का स्वरूप अनिबद्ध होने के कारण तबले पर ताल के ठेके का अखण्ड रूप से बजते रहना जरूरी है।

(6) इस पद्धति में ध्रुपद, धमार, ख्याल, भजन या ठुमरी इत्यादि शैलियों के गायन का प्रदर्शन किया जाता है।

कर्नाटक संगीत

(1) कर्नाटक संगीत मुख्यतः निबद्ध रूप से गाया जाता है।

(2) कर्नाटक संगीत लय प्रधान अथवा ताल प्रधान होता है।

(3) कर्नाटक संगीत में गायन करते समय केवल संगतियाँ, नेरावल और सरगम का प्रयोग होता है। तथा आलाप तान नहीं ली जाती।

(4) गीतों की लय प्रायः मध्यलय में रहती है।

(5) कर्नाटक संगीत का स्वरूप निबद्ध होने के कारण मृदंगम् पर इनकी ताल का उपयोग संगीत का सौंदर्य बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता है।और ठेका बंद होने पर भी गायन को कोई नुकसान नहीं पहुँचता।

(6) रागम्, तालम्, पल्लवी तथा कीर्तनम् या ति का प्रदर्शन किया जाता है।

समानता

(1) दोनों ही पद्धतियों में शुद्ध और वित स्वर मिलाकर कुल बारह स्वर स्थान है।

(2) दोनों ही पद्धतियों में बारह स्वरों से थाट या मेल पद्धति के आधार पर रागों की उत्पत्ति होकर संगीत में उनका प्रयोग किया जाता है।

(3) दोनों पद्धतियों में आलाप–गान को स्वीकार किया जाता है।

(4) दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीजे गाई जाती है।

(5) जन्य–जनक (थाट–राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

भिन्नता :–

(1) दोनों ही संगीत पद्धतियों में यद्यपि स्वर–स्थान बारह ही माने गए हैं ,किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अंतर है।

(2) उत्तरी संगीत पद्धति में केवल दस थाटों में रागों को वर्गीकृत किया गया है, किन्तु दक्षिणी पद्धति में बहत्तर थाटों या मेलों का प्रमाण मिलता है।

(3) दोनों पद्धति में भाषा का अन्तर है।

(4) दोनों पद्धतियों में ताल भिन्न–भिन्न है।

(5) दोनों शैलियों में स्वरोंच्चारण तथा आवाज निकालने की शैलियाँ भिन्न–भिन्न है।

(6) दोनों पद्धतियों के प्रायः अपने स्वतन्त्र राग है।

(7) दक्षिणी संगीत–पद्धति के शुद्ध सप्तक को कनकांगी अथवा मुखारी मेल कहते हैं। किन्तु उत्तरी–संगीत पद्धति के शुद्ध स्वर–सप्तक को बिलावल ठाठ कहा जाता है।

मुख्य बिन्दु –

- अभ्यास करते समय स्वरों को निश्चित क्रम से छोटे–छोटे समूह में रचकर जो टुकड़े बनते है, उन्हें अलंकार कहते हैं।'भरत' ने अलंकारों को संगीत में एक आवश्यक तत्व माना है भरत का इसकी आवश्यकता संबंधी यह कथन है कि जिस प्रकार चन्द्ररहित रात्रि, जल विहिन नदी पुष्प रहित लता, जल विहिन नदी एवं आभूषणहीन स्त्री की अवस्था होती है वही अवस्था बिना अलंकार के गीत की होती है। गायन या वादन क्रिया में अलंकार का प्रयोग कर अपने गाय–वादन को सुन्दर व भावयुक्त बनाया जाता है।
- निर्धारित श्रुति अन्तराल द्वारा सात स्वर के परस्पर, संबंध से ग्राम का निर्माण होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

(1) वर्ण की विशिष्ट रचना अथवा स्वरों की सिलसिलेवार रचना को क्या कहते हैं?

(अ) आरोह (ब) अवरोह (स) अलंकार (द) वर्ण

(2) जिस छोटे स्वर समुदाय से एक ही राग का बोध हो उसे कहते हैं –

(अ) आलाप (ब) आरोह (स) वर्ण (द) पकड़

(3) निम्नलिखित स्वर समूह में आरोह किसे कहेंगें

(अ) म ग रे सा (ब) ग म प ध नि (स) प ध म ग (द) सा रे ग रे

(4) मूर्च्छना की उत्पत्ति किससे हुई थी।

(अ) ग्राम से (ब) सप्तक से (स) तान से (द) अलंकार से

(5) स्वरों को कम्पित करके उच्चारण करने को क्या कहते हैं।

(अ) वक्र स्वर (ब) गमक (स) तान (द) खटका

(6) वर्ण कितने प्रकार के होते हैं –

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

उत्तरमाला : (1) स (2) द (3) ब (4) अ (5) ब (6) स

लघुउत्तर प्रश्न –

(1) वर्तमान में सम्पूर्ण भारत में कितनी संगीत पद्धतियाँ प्रचलित हैं?

(2) आलाप में किसकी प्रधानता होती है?

(3) वर्ण किसे कहते हैं?

(4) स्वर समूह को ग्राम कब कहाँ जायगा?

(5) आरोह किसे कहते हैं?

(6) ध्रुपद गायक किस प्रकार के आलाप करते हैं?

(7) राग प्रदर्शन में आलाप बंदिश में कब किया जाता है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) अलंकार की परिभाषा देते हुए समझाईये कि संगीत में इसका क्या महत्त्व है? दो अलंकार भी लिखिये।

(2) भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

(3) ग्राम किसे कहते है तथा कितने प्रकार के माने गये हैं? विस्तार से वर्णन करिये।

(4) तान की परिभाषा लिखते हुए तान के विभिन्न प्रकार भी समझाईये।

(5) आलाप किसे कहते हैं?समझाईये। आलाप का प्रयोग राग में कब किया जाता है?